Chapter- 1

भारतीय शास्त्रीय संगीत क्या है ?

यद्यपि शोध विषय के अंतर्गत मुख्य रूप से हिन्दुस्तानी (उत्तर - भारतीय) शास्त्रीय संगीत के गायन विषय की आवश्यकतानुसार, वैदिक युग से आधुनिक तक भारतीय शास्त्रीय संगीत के इतिहास का उल्लेख आवश्यक था, इसलिये विषय का शीर्षक, 'भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य' दिया गया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत मुगल-काल से दो भागों में विभक्त हुआ है; एक हिन्दुस्तानी संगीत दूसरा कर्नाटक संगीत। हिन्दुस्तानी संगीत का संबंध उत्तर-भारतीय संगीत से और कर्नाटक संगीत का संबंध दक्षिण-भारतीय संगीत से है। अपनी स्वतंत्र शैली के कारण इन दो भागों को, भारतीय संगीत की दो पद्धतियाँ माना गया है।

भारतीय संगीत की शास्त्रीयता का विवेचन —

भारतीय शास्त्रीय संगीत क्या है? इस प्रश्न पर विचार करते हुये अनेक विद्वानों से विचार-विमर्श का मौका आया उस समय एक विद्वजन ने यह मत रखा कि, 'शास्त्रीय' शब्द का प्रयोग संगीत जगत में १९ वीं शताब्दी से पहले नहीं हुआ है। इसका प्रयोग विगत कुछ दशकों से ही प्रारंभ हुआ है।

अतः इस प्रश्न पर विचार करने की दृष्टि से जब हम प्राचीन काल की ओर अर्थात् वैदिक काल की ओर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि भारतीय संगीत प्रारंभ से दो धाराओं में विभक्त है। ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक काल से ही हमारे शास्त्रीय संगीत के अस्तित्व में आने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

इन दो धाराओं का विवेचन डॉक्टर परांजपे ने इस प्रकार किया है। इन दो धाराओं में से एक का प्रयोग धार्मिक समारोहों (यज्ञयाग) पर धार्मिक विधि-विधान के अंतर्गत किया जाता रहा है और दूसरी वह जिसका प्रयोग लौकिक समारोहों पर लोकरंजन के लिये किया जाता था।

वैदिक काल में ये दोनों धारायें समानांतर रूप से चलती रहीं और दोनों में पृथकता भी बनी रही। पहली धारा 'साम संगीत' कहलाई तथा दूसरी धारा, 'गांधर्व संगीत' कहलाई। 'साम' वैदिक महर्षियों का संगीत था और 'गांधर्व' व्यवसायी गंधर्वों द्वारा गाया जाने वाला संगीत था। साम गाने वाले आचार्यों की लम्बी परंपरा में गंधर्वों को कोई स्थान प्राप्त नहीं था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये लोग क्रमशः तत्कालीन मार्गी तथा देशी संगीत का ही प्रतिनिधित्व करते थे।

"रामायण और महाभारत के काल तक गांधर्व का समावेश, 'मार्ग' संगीत में होने लगा था। लवकुश ने जो रामायण का गायन सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत किया था, वह तत्कालीन शिष्ट और अधिकारी जनों को मान्य होने के कारण 'मार्गी' संगीत कहलाया।[1]" इसके पश्चात् हम देखते हैं कि 'मार्गी' और 'देशी' संगीत की दोनों धाराओं के मध्य आदान-प्रदान सदा से चलता आया है। इन गीत प्रकारों की विस्तृत जानकारी पंडित शार्ङ्गदेव रचित ग्रंथ, 'संगीत रत्नाकर' में प्राप्त होती है। इन्होंने संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय में मार्गी तथा देशी को इस प्रकार स्पष्ट किया है —

मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।
यो मार्गितो विरिञ्च्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः॥

अर्थात् ब्रह्मदेव ने चारों वेदों से शोध कर निकाला; और जो भरतादि मुनियों ने शंकर के सम्मुख गाया वही मार्गी संगीत है।

देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरञ्जकम्।
गीतं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते॥

---

१ संगीत बोध, डा. शरच्चंद्र परांजपे, पृ. ३,४

अर्थात् लोगों की अभिरुचि के अनुरूप गाया जाने वाला संगीत देशी संगीत है। इसका निर्माण मनुष्य ने अपनी बुद्धि के अनुसार किया। 'संगीत रत्नाकर' पर चतुर कल्लिनाथ ने टीका की है। उसमें उन्होंने मार्गी तथ देशी संगीत का वर्णन इस प्रकार किया है। 'यो मार्गितो विरिंच्याद्यैः।' इस पर टीका करते हुये कल्लिनाथ कहते हैं, 'मार्गित्वान्मार्गः चतुर्षु वेदेष्वन्विष्य कृतत्वात्।' मार्ग इस शब्द का अर्थ है, 'शोधना'। इसीलिये चारों वेदों से खोजकर जिस संगीत का प्रयोग किया गया वही मार्गी संगीत है। दूसरा संकेत रत्नाकर के प्रथम अध्याय में मिलता है —

रञ्जकः स्वरसंदर्भो गीतमित्यभिधीयते।
गान्धर्वगानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम्॥
अनादिसम्प्रदाय यद्गान्धर्वैः सम्प्रयुज्यते।
नियतं श्रेयसो हेतुस्तद्गान्धर्वं जगुर्बुधाः॥
यत्तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम्।
देशीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरंजकम्॥

रंजक स्वर को गीत कहा गया है। इसके दो प्रकार गान्धर्व और गान हैं। जिस गीत का अनादिकाल से प्रचार है, अर्थात् जिसका प्रयोग गांधर्व करते हैं, जो नियत है और जिसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है, उस गीत को बुद्धिमान जन गांधर्व कहते हैं। जिस गीत की रचना वाग्गेयकार करते हैं, जो लक्षणों से युक्त है, जिसका देशी राग में प्रयोग होता है जो जनरंजक है उसे गान कहते हैं।

इस श्लोक पर टीका करते हुये कल्लिनाथ कहते हैं — " गांधर्वमार्गः। गानं तु देशीत्यवगन्तव्यम्। अनादिसम्प्रदायमित्यनेन गान्धर्वस्य वेदवदपौरुषेयत्वमिति सूचितं भवति। गानं तु वाग्गेयकारादे परतन्त्रपौरुषेयमेव।" अर्थात् गांधर्व और मार्गी एक ही हैं। गान अर्थात् देशी संगीत। 'अनादिसम्प्रदाय द्वारा संकेत मिलता है कि, गांधर्व गीत अपौरुषेय हैं जबकि गान वाग्गेयकारों द्वारा रचित होने के कारण पौरुषेय है।

शाङ्र्गदेव ने बताया कि संगीत ये क्रियात्मक कला है अतः क्रिया (लक्ष्य) व शास्त्र में जहाँ विरोध होगा वहाँ लक्ष्य अर्थात् क्रिया को अधिक प्रधानता दी जायेगी।

यद्वा लक्ष्यप्रधानानि शास्त्रण्येतानि मन्वते।
तस्माल्लक्ष्यविरुद्धं यत्तच्छास्त्रं नेयमन्यथा॥

'एतानि शास्त्राणि' इस पर कल्लिनाथ ने इस प्रकार टीका की है — देशिविषयाणीत्यर्थः अर्थात् देशी संगीत में क्रिया की प्रधानता है। जनरूचि के आधार पर देशी संगीत में क्रिया बदलती रहती है। जब क्रिया बदलती है तो क्रिया और शास्त्र इनमें सहज ही अंतर स्थापित होता है; अतः क्रिया और शास्त्र में साम्मजस्य रखने के लिये क्रिया के अनुरूप उसके शास्त्र में भी उचित परिवर्तन किया जाता है। कल्लिनाथ के, 'शास्त्रविषयाणि' का 'देशीविषयाणि' इस प्रकार अर्थ करने पर स्पष्ट होता है कि देशीसंगीत ही क्रिया प्रधान है, मार्गी संगीत नहीं मार्गी संगीत में क्रिया यह अंग जनरूचि के प्रमाण से बदलता नहीं है। उसका लक्ष्य (क्रिया) लक्षण (शास्त्र) से इतना नियंत्रित होता है कि उसमें परिवर्तन होता ही नहीं है।

मतंग मुनि का कहना है — "आलापादिनिबद्धो यः स मार्गः प्रकीर्तितः। आलापादिविहीनस्तु स च देशी प्रकीर्तितः। इससे स्पष्ट होता है कि मार्गी संगीत में आलाप आदि नियम होते थे; परंतु देशी संगीत में नहीं

कल्लिनाथ ने देशी संगीत की विवेचना इस प्रकार की है — 'देशीत्वं च तत्रदेशमनुजमनोरञ्जनैकफलत्वेन कामाचारप्रवर्तितम्।' अर्थात् देशी संगीत वही है जिसका उद्देश्य भिन्न देशों के लोगों का मनोरंजन करना है। यह नियमबद्ध नहीं होता। लोग इच्छानुसार इसे गाते बजाते हैं।

अतः वैदिक संगीत के आधार पर आलाप, अलंकार आदि गुणों से युक्त तथा समृद्ध होकर संगीत का जो उत्कृष्ट विकास हुआ उसे ही प्राचीन काल में मार्गी संगीत कहा गया। अर्थात् मार्गी संगीत ही बाद में गांधर्व

हुआ। वैदिक काल में सामगायन के अतिरिक्त संगीत के मर्मज्ञ गांधर्व संगीत का स्वतंत्र कला के रूप में प्रयोग करते थे। भरत ने नाट्यशास्त्र के २८ वें अध्याय में गांधर्व के लक्षण इस प्रकार दिये हैं —

यत्तु तन्त्रीकृतं प्रोक्तं नानावाद्यसमाश्रयम्।
गान्धर्वमिति तन्ज्ञेयं स्वरतालपदात्मकम्॥

अर्थात् जो गीत तारवाद्य के साथ गाया जाय, जिसमें विभिन्न वाद्यों का समावेश हो, जो स्वर ; ताल ; पदों से युक्त हो वही गीत गांधर्व गीत है। —

'श्रुति, स्वर, ग्राम, जात्यादि नियमो नास्ति।'

अर्थात् जिसमें श्रुति, स्वर, ग्राम जाति आदि नियम नहीं हों वही देशी संगीत है ; तथा जिसमें यह सब नियम हैं वही मार्गी संगीत है। मतंग मुनि द्वारा देशी संगीत की परिभाषा यही दी है।

अतः लोग स्वयं अपनी इच्छानुसार नियमों से रहित जो गीत गाते हैं उसे ही देशी संगीत कहा गया। कालांतर में इसी गीत में स्वर, ग्राम ताल आदि नियमों का समावेश हुआ ; और इसका ही परिवर्तन देशी रागों में हुआ। अतः आलाप, तान, अलंकारों से मुक्त स्वर, लय, ताल में व्यवस्थित गायन ही आधुनिक युग में मार्गी संगीत है। इसी प्रकार नियमों के बंधन से मुक्त केवल मनोरंजन के लिये, स्वेच्छा से गाये जाने वाले गायन को हम देशी संगीत कहते हैं।

प्राचीन और आधुनिक मार्गी संगीत में भेद —

प्राचीन काल में मार्गी संगीत षड्ज गांधार व मध्यम ग्राम से उत्पन्न था वही आधुनिक मार्गी संगीत केवल षड्ज ग्राम से उत्पन्न माना गया। पंडित रामामात्य ने, 'स्वरमेल कलानिधि' ग्रंथ में देशी राग (आधुनिक मार्गी संगीत) के लक्षण इस प्रकार दिये हैं —

देशीरागाश्च सकलाः षड्जग्रामसमुद्भवाः।
ग्रहांशन्याससमन्द्रादि षाडवौडवपूर्णकाः॥

अर्थात् सभी देशी राग षड्ज ग्राम से उत्पन्न हैं। प्रत्येक राग

के ग्रह अंश तथा न्यास स्वर होते हैं। तथा राग के तीन प्रकार औड़व षाड़व संपूर्ण हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रह, अंश, न्यास, औड़व, षाड़व, सम्पूर्ण इत्यादि मार्गी संगीत के ही लक्षण हैं अंतर केवल इतना है कि प्राचीन मार्गी संगीत केवल षड़ज ग्राम तक सीमित नहीं था।

प्राचीन काल में मार्गी संगीत में गीत छंदोबद्ध होते थे आज नहीं। बा. गं. आचरेकर ने अपनी पुस्तक, 'भारतीय संगीत और संगीतशास्त्र' में प्रमाणित किया है कि आधुनिक युग की भाँति प्राचीन काल में भी घरानों का अस्तित्व सम्प्रदाय के रूप में था। प्राचीन काल में वेद ऋचाओं का गायन ऋषि मुनि करते थे। उन्होंने रचनाकारों के नाम इस प्रकार दिये हैं —

अंगिरस — अंगीरस के साम द्वारा स्तुति किये जाने वाले ऐसा उल्लेख ऋग्वेद में है।

भारद्वाज — बृहत् साम के रचनाकार

वशिष्ठ — रथन्तर साम के रचनाकार अब यह अस्तित्व में नहीं हैं।[1] अतः इन रचनाकारों के सम्प्रदाय अथवा परंपरा का निर्माण (घरानों का जन्म) तभी हो गया था यह कहा जा सकता है।

इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल की तरह मार्गी तथा देशी संगीत आधुनिक काल में अर्थात् आज भी अस्तित्व में हैं। केवल दोनों के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। अतः आज का शास्त्रीय संगीत ही मार्गी संगीत है। और उपशास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत ही देशी संगीत है।

संगीत का इतिहास और वर्तमान, भविष्य इन्हीं दो धाराओं के परस्पर आदान-प्रदान की लम्बी कहानी है। संगीत की इन दोनों विधाओं (धाराओं) में अंतर महत्वपूर्ण है। प्रथम को संस्कार और परिष्कार प्राप्त होने के कारण शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त है; दूसरी लोकरुचि के

---

१ 'भारतीय संगीत और संगीतशास्त्र', बा. गं. आचरेकर, पृ. १८६.

अनुकूल विकसित हुई। प्रथम में रंजकता के साथ अनुशासन तथा नियमों का भी उतना ही महत्व हैं। दूसरी में अनुशासन लोकरुचि (अर्थात पूर्णतः रंजकता) का है। शास्त्रीय संगीत जहाँ शैलीगत गंभीरता और संयतता के लिये प्रसिद्ध हैं; देशी संगीत स्वर-वैचित्र्य तथा चपलता के लिये अनुशंसनीय है। ये दोनों ही धारायें अपने आप में पूर्ण तथा अनुपम हैं साथ ही हमारी संस्कृति की अपूर्व देन और धरोहर हैं। तुलनात्मक दृष्टि से इन दोनों धाराओं को छोटे या बड़ेपन में बांधने के बजाय इनमें निहित रस का आनंद उठाते हुये भविष्य में इनकी उन्नति तथा विकास-मार्ग प्रशस्त करना ही हमारा कर्तव्य हैं।

इसी प्रकार संगीत के लिये, 'शास्त्रीय' शब्द भी वैदिक काल में, 'साम' तथा मध्यकाल में, 'पक्के गाने' की शब्दगत यात्रा तय करता हुआ १९ वीं शताब्दी में, 'शास्त्रीय संगीत' कहलाने लगा। इस शब्द प्रयोग के पीछे अंग्रेजी के प्रभाव की भी महत्वपूर्ण भूमिका हम मान सकते हैं। अंग्रेजी में, 'Classical Music' शब्द शास्त्रीय संगीत का ही पर्यायवाची है।

शास्त्रीय संगीत क्या है ? —

प्राणियों में मनुष्य को बुद्धि और विवेक से युक्त आत्माभिव्यक्ति करने में सक्षम श्रेष्ठ प्राणी माना गया है। इसीलिये जब अपने जीवन को अधिक से अधिक सुखमय बनाने के लिये मनुष्य अपनी बुद्धि खर्च करने लगा, वैसे-वैसे अनेक कलाओं का निर्माण होता गया। कला का मुख्य परिणाम आनंद है। आनंद के, 'क्षणिक' और, 'स्थिर' यह दो प्रकार हैं; इन दो प्रकारों के आधार पर कला के दो भेद किये जा सकते हैं, एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। वास्तु-कला, पाक-कला, सिलाई-बुनाई आदि कलायें जीवन की प्रासंगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली भौतिक कलायें हैं इनसे प्राप्त होने वाला आनंद क्षणिक है।

कला के दूसरे प्रकार के अंतर्गत ललित कलाओं का समावेश है। ललित-कला अर्थात् सौन्दर्य की अनुभूति कराने वाली कला तथा उस सौन्दर्य से आल्हाद् उत्पन्न करना यह ललित-कला का काम है। ललित-कला द्वारा प्राप्त होने वाला आनंद अतीन्द्रिय होता है। तथा स्थिर होता है। इसका प्रभाव मन पर होकर फिर अंतःकरण से होता हुआ आत्मा को पहुँचता है। जिस कला में भावप्रदर्शन जितना अधिक और कला की अभिव्यक्ति के लिये प्रयोग किया मूर्ताधार (भौतिक सामग्री) जितना सूक्ष्म होगा वह कला उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है। इस दृष्टि से संगीत कला श्रेष्ठ मानी गयी है और उसे, 'कलाओं की कला' के गौरव से गौरवान्वित किया गया है।

इन ललित कलाओं में चित्र, साहित्य तथा संगीत कला (गीत, वाद्य, नृत्य) का समावेश किया गया है। संगीत कला की श्रेष्ठता के आधार पर ही उसे 'पंचमवेद' अथवा 'गान्धर्व वेद' भी सम्बोधित किया जाता है। वैसे संगीत शब्द इतना सीधा, सरल व सहज लगता है, कि उसके अर्थज्ञान का दावा बालक से लेकर वृद्ध तक करते हैं; परंतु यह इतना आसान नहीं है। युगीन संदर्भों में शब्द अपना अर्थ बदलते रहते हैं शास्त्रीय संगीत के साथ भी यही हुआ है। अपनी आदि स्थिति में 'गायन' का ही अंतर्भाव लिये तथा मध्ययुग में गायन-वादन-नर्तन इन तीनों विधाओं को समेटकर गायन को प्रमुखता देते हुये आधुनिक युग में संगीत की इन तीनों विधाओं ने अपने स्वतंत्र क्षेत्र अर्जित कर लिये हैं। 'भारतीय संगीत कोश' में संगीत की व्याख्या इसी स्वतंत्रता को ध्यान में रखकर इस प्रकार दी है :- "संगीत वर्तमान काल में राग-प्रधान कंठ्य और वाद्य संगीत के साथ छंद और ताल-प्रधान अवनद्ध वाद्य की संगति मिलाकर संगीत रूप में प्रचलित हुआ है। नृत्य को संगीत कला से पृथक कर महत्वपूर्ण मुख्य कला के रूप में स्वीकार किया गया है।"[१]

---

१ 'भारतीय संगीत कोश' विमलकांत राय चौधुरी, पृ. १५०

पाश्चात्य देशों में वर्तमान संगीत की परिभाषा का अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक आधार निश्चित किया गया है; और संगीत की परिभाषा इस प्रकार दी है-
" The arts or science of arranging sounds in notes and rhythems to give a design, pattern or effect " १

अर्थात् 'वांछनीय आदर्श अथवा प्रभाव प्रेषित करने के लिये ध्वनियों को स्वरों तथा लयों में व्यवस्थित करने की कला अथवा विज्ञान को संगीत कहते हैं।' इसमें केवल स्वर और लय तत्व को ही संगीत के अंतर्गत स्वीकार किया गया है।

वैसे चाहे गान विधा को गायन, वादन तथा नर्तन के साथ संगीत माना जाय या केवल स्वर-लय युक्त 'गीत' या गायन कला माना जाय दोनों ही दशाओं में उसका आधार नाद ही है।

नाद की परिभाषा करते हुये संगीत पारिजात में अहोबल ने कहा है —

नाभेरूर्ध्वं हृदिस्थानान्मारुत: प्राणसंज्ञक:।
नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नाद: प्रकीर्तित:॥

अर्थात् नाभी के ऊपर हृदयस्थान से ब्रह्मरंध्र स्थित प्राणवायु में एक प्रकार का शब्द होता है। उसी को नाद कहते हैं। ब्रह्माण्ड की चराचर वस्तुओं में नाद व्याप्त है अतएव इस नाद को नादब्रह्म यह संज्ञा दी गयी है।

नाद के दो भेद माने गये हैं —

१ आहत नाद २ अनाहत नाद

जो नाद केवल ज्ञान से जाना जाता हो जिसके उत्पन्न होने का कोई कारण न हो उसे 'अनाहत' नाद कहते हैं।

आघात स्पर्श या संघर्ष से जो शब्द (आवाज़, ध्वनि) निकलता है उसे 'आहत' नाद कहते हैं। फिर जिस ध्वनि में माधुर्य और ठहराव हो, वही जो श्रवणेन्द्रिय

---

१ Collins new age Encyclopedia, १९६३ संस्करण, पृ.९६३

को प्रिय लगे उसे ही संगीतोपयोगी नाद कहा जाता है।

हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने गान अथवा वादन के लिये २२ संगीतोपयोगी नादों का चुनाव किया। इन्हीं २२ नादों को श्रुति की संज्ञा दी गयी। ये केवल २२ नाद-स्थान इसलिये चुने गये क्योंकि इसके पश्चात् प्राप्त होने वाला २३ वाँ नाद-स्थान फिर प्रथम श्रुति के समान ही होगा।

'जो नाद गीत में प्रयुक्त किया जा सके एक दूसरे से अलग व स्पष्ट पहचाना जा सके उसे, 'श्रुति' कहते हैं।"[१] क्योंकि बाईस श्रुतियों पर गान करने में कठिनाई होती, अतः इन बाईस में से बारह स्वर चुनकर गान-कार्य होने लगा।

आधुनिक विद्वानों ने पहली श्रुति पर षड्ज, पांचवी पर ऋषभ, आठवीं पर गांधार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं पर निषाद स्वर स्थिर किये हैं।[२]

ध्वनि में निरंतर भनक या गुनगुनाहट से कोई ध्वनि किसी ऊँचाई पर पहुँचकर वहाँ स्थापित रहे उसे संगीत के स्वर कहते हैं। स्वरों का स्थान निश्चित होता है। वे प्रत्येक अपने-अपने स्थान से निरंतर बोलते रहते हैं तथा सुनने में रंजक और मधुर प्रतीत होते हैं।

श्रुति और स्वर में अंतर —

अहोबल पंडित के अनुसार—"श्रुतियाँ स्वरों से पृथक नहीं हैं स्वर और श्रुति में उतना ही भेद है जितना कि सर्प और उसकी कुंडली में (अर्थात् इन २२ श्रुतियों में से जो श्रुतियाँ किसी राग विशेष में प्रयुक्त होती हैं, वे 'स्वर' कहलाती हैं। जब किसी अन्य राग में इन स्वरों के अतिरिक्त अन्य श्रुतियाँ काम में ली जाती हैं, तो जो अब तक काम में आईं, वे स्वर

---

१ 'संगीत विशारद' वसंत, पृ. ४६
२ वही " " पृ. ४६

बन गयीं, और जो स्वर छोड़ दिये गये वे पुनः श्रुतियों बन गयीं। उदाहरणार्थ आपने मालकौंस राग गाया तो जिन श्रुतियों पर यह राग गाया बजाया जायेगा वे स्वर कहलायेंगी आपने फिर 'हिन्डोल' राग गाया, तो जो श्रुतियों मालकौंस में प्रयुक्त होते समय स्वर बन गयी थीं अब उन्हें छोड़ना पड़ा, अतः वे पुनः श्रुतियाँ बन गयीं; और जो श्रुतियाँ हिन्डोल में प्रयुक्त होंगी वे स्वर कहलायेंगी। इस प्रकार जब गान-वादन में श्रुति का प्रयोग नहीं होता तो वह कुंडली की भाँति सोई हुई रहती है और जब इसका प्रयोग किसी राग विशेष में होता है तो वह सर्प की भाँति क्रियाशील हो जाती है। इसी आधार पर श्रुति को कुंडली और स्वर को सर्प की उपमा दी गयी है।"१

स्वरों के भेद — १ शुद्ध स्वर २ विकृत स्वर

१ शुद्ध स्वर सात होते हैं यथा — षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद

२ विकृत स्वर दो प्रकार के होते हैं --
१ कोमल २ तीव्र

कोमल स्वर — स्वर अपने निश्चित स्थान से उतरने पर कोमल हो जाता है यथा रे ग ध नि

तीव्र स्वर — अपने निश्चित स्थान से उपर चढ़ा स्वर तीव्र स्वर कहलाता है यथा :- मे इस प्रकार ये बारह स्वर ही संगीत-कला के प्रेषण का माध्यम अथवा मूर्त आधार हैं। इन्हीं बारह स्वरों पर सम्पूर्ण रागदारी संगीत आधारित है और यही रागदारी संगीत मार्ग संगीत अथवा पक्के गाने का अथवा भारतीय शास्त्रीय संगीत (उत्तर भारतीय कंठ्य संगीत) का पर्याय है।

---

१ 'संगीत विशारद', वसंत, ४६

अतः भारतीय शास्त्रीय संगीत क्या है यह जानने के लिये राग के विषय में जानना आवश्यक है।

राग इस शब्द की उत्पत्ति 'रंज' धातु से हुई है। रंज का अर्थ है रिझाना, मन को आनंद देने वाला। राग यह स्वरों की ऐसी विशिष्ट रचना है जो लोगों का रंजन करती है; लोगों के हृदय को आनंद देती है। इसीलिये कहा गया है 'रंजयति इति रागा:' पंडित भातखण्डे ने अपने ग्रंथ 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' में राग की परिभाषा देते हुये कहा है —

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषित:।
रंजको जनचित्तानाम् स राग: कथितो बुधै: ॥

अर्थात् स्वर तथा वर्ण से युक्त विशिष्ट ध्वनिसमूह जो रंजक अर्थात् लोगों के चित्त को आनंद देने वाला है उसे विद्वान राग कहते हैं।

जिस प्रकार साहित्य-कला में भाषा के मूर्ताधार को माध्यम मान कर कला की अभिव्यक्ति कविता, कहानी, उपन्यास, गद्य आदि विधाओं के माध्यम से की जाती है; उसी प्रकार शास्त्रीय संगीत (गायन) में स्वरों के मूर्ताधार को माध्यम बनाकर रागों की अभिव्यक्ति के लिये ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी टप्पा, तराना आदि विधाओं का प्रचलन है।

संगीत की उत्पत्ति —

संगीत कला कब उत्पन्न हुई यह कहना कठिन है; क्योंकि उस सम्बन्ध में उपयुक्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। अतः इस प्रश्न पर विद्वानों में काफी मतभेद हैं। फिर भी संगीत ने मनुष्य के जीवन में उसके जन्म के साथ ही प्रवेश किया यह कहना असंगत नहीं होगा। बालक के प्रथम रुदन में संगीत (नाद) ही है। अतः संगीत

मनुष्य से उत्पन्न हुआ मानने पर भी संगीत - कला के रूप में कब से मान्य हुआ, उसका विकास किस प्रकार हुआ इस संबंध में विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। संगीत के जन्म के विषय में प्रचलित विभिन्न मत इस प्रकार हैं:-

१ धार्मिक दृष्टिकोण —

भारतीय पुराविदों के अनुसार संगीत-कला व शास्त्र का उद्भव स्वयम्भू परमेश्वर से हुआ है। भारतीय परंपरा के अनुसार नटराज शिव नृत्यकला के आदि स्त्रोत हैं तथा भगवती सरस्वती गीत व वाद्य- कला की प्रवर्तिका हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार गान्धर्व के तत्वों को समाहित करने वाला नाट्यवेद स्वयं ब्रह्मा की रचना है। हमारे यहाँ प्रचलित अलौकिक मत के अनुसार देवता ही संगीत के जन्मदाता माने गये हैं।

२ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण —

पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के अनुसार संगीत का जन्म एक शिशु के समान मनोविज्ञान के आधार पर हुआ जिस प्रकार एक बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियायें मनोविज्ञान की आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है, उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव मानव में मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।

३ अन्य मत —

फारसी विद्वान के अनुसार हज़रत मूसा द्वारा अपना असा पत्थर पर मारने से पत्थर के सात टुकड़े होकर सात जलधारायें निकलीं इन्हीं से संगीत के सात स्वर उत्पन्न हुये। एक अन्य विद्वान के मतानुसार पहाड़ों पर मूसीकार नामक पक्षी पाया जाता है, उसकी नाक में बाँसुरी की भाँति सात सुराख होते हैं उन्हीं से संगीत के सात स्वरों की रचना हुई।

४ प्राकृतिक दृष्टिकोण — अनेक विद्वानों का मत है कि

प्रारंभ में अपने पार्श्वस्थ पशु, पक्षियों, पेड़ों तथा प्रकृति की विभिन्न ध्वनियों को सुनकर तथा उसकी सुन्दरता को अनुभूत कर स्वयं ऐसी ही ध्वनियों का अनुकरण करने की प्रेरणा आदिमानव को प्राप्त हुई होगी। आदिम जातियों में गायन के अलावा नृत्यों के अंगसंचालन व वेशभूषा, वाद्य आदि भी प्राकृतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित होते हैं, यह आज भी हम अनुभव करते हैं। अतः प्रारंभ में मानव ने संगीत के उपकरणों के निर्माण की प्रेरणा भी प्रकृति से प्राप्त की हो इसमें संदेह नहीं है। वंशी की कल्पना उसने सछिद्र बाँस-वृक्षों से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को सुनकर की हो, इसी प्रकार तन्तु वाद्य की परिकल्पना मृगया तथा युद्ध के समय धनुष की प्रत्यन्चा से उत्पन्न होने वाली टंकार को सुनकर की गयी होगी। नाट्य शास्त्र के अनुसार मृदंग वाद्य की कल्पना पत्तों पर गिरने वाले जल बिन्दुओं के आघात शब्दों से हुई।१

इस संबंध में स्वामी प्रज्ञानंद का मत उल्लेखनीय है, "स्वामी प्रज्ञानंद के अनुसार आदिम युग में संगीत मनुष्य के अंतःकरण में निहित था। विविध कार्यों में मनुष्य अपने से अधिक शक्तिशाली प्रकृति को समझता था विभिन्न पशु पक्षियों की ध्वनि को वह मंगल या अमंगल का प्रतीक मानता था। अनुकरण प्रिय मनुष्य उन ध्वनियों की सहायता से, अर्थहीन भाषा के संगीत से विश्व-देवता की वंदना किया करता था। संभवतः वह संगीत एक या दो स्वरों का होता था। सप्त-स्वरों का विकास कालक्रम में हुआ इसी श्रृंखलानुसार संगीत की उत्पत्ति हुई।"२

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संगीत का उद्गम मानव जाति के उद्भव के साथ ही हुआ। यही कारण है कि आदिम जातियों के संगीत में परिष्कार की

---

१ शरच्चंद्र परांजपे, 'भारतीय संगीत का इतिहास', पृ.६-८

२ 'संगीतायन', अमलदास शर्मा, पृ.५

अपेक्षाकृत न्यूनता पायी जाती है। परिष्कृत और श्रेणीबद्ध संगीत सदैव प्रौढ़ मस्तिष्क तथा विकसित सभ्यता का सहचर रहा है। शास्त्रीय संगीत वास्तव में 'संगीत' के विकास की एक प्रक्रिया है। यह संगीत की वह धारा है जो कालक्रम से विकसित होते हुये यहाँ तक पहुँची है और आगे भी उसके विकास की यह यात्रा जारी रहेगी। यह उस पौधे के समान है जो धीरे-धीरे समय के साथ विकसित होता हुआ वट-वृक्ष का रूप धारण कर लेता है।